राजनांदगाँव में मुक्तिबोध ; कुछ काव्य बिम्ब

हिंदी कविता के महानतम हस्ताक्षरों में से एक गजानन माधव मुक्तिबोध का छत्तीसगढ़ के राजनांदगांव शहर से नाता कितना गहरा था,यह बताने की ज़रुरत शायद नहीं है। इतना याद रहे कि सन 1958 से मृत्यु पर्यन्त वे राजनांदगांव दिग्विजय कालेज में व्याख्याता रहे। यहीं उनके तत्कालीन आवास स्थल को मुक्तिबोध स्मारक के रूप में यादगार बनाकर वहां हिंदी के दो अन्य साहित्यकार पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और डॉ.बलदेव प्रसाद मिश्र की स्मृतियों को संजोते हुए सन 2005 में एक सुन्दर संग्रहालय की स्थापना भी की गई है। स्मरणीय है कि मुक्तिबोध की सबसे ज्यादा चर्चित लम्बी कविता ' अँधेरे में ' को भी पचास साल पूरे हो गए हैं। इस कविता का संभावित रचनाकाल 1957 से 62 के बीच ठहरता है। नागपुर-राजनांदगांव के दरम्यान इस कविता का अंतिम संशोधन 1962 में और 'कल्पना' में अंतिम प्रकाशन 1964 में 'आशंका के द्वीप अँधेरे में' शीर्षक से हुआ था।

बहरहाल कुछ और कहने से पहले मुक्तिबोध की चर्चित लम्बी कविता 'अँधेरे में' के विषय में प्रख्यात कवि-समालोचक अशोक वाजपेयी ने अपने एक ताज़ा संस्मरण से कुछ अंश यहां साझा कर लें। श्री वाजपेयी कहते हैं – अपने उस समय, उस लम्बी कविता का कोई शीर्षक नहीं था : यह कहना भी कठिन है कि पूरी हो गई थी या नहीं। वह शायद उसका पहला प्रारूप था जिसे मुक्तिबोध हमारे आग्रह पर साथ ले आए थे। वे उन दिनों राजनांदगांव के दिग्विजय महाविद्यालय में अध्यापक थे और उस नाते सागर विश्वविद्यालय की कोर्ट में उन्हें महाविद्यालय से नामजद किया गया था। कोर्ट की बैठक साल में एक बार होती थी और वे उसमें भाग लेने आते थे। यह 1959 की बात है : मेरा बीए का अंतिम वर्ष था। हमने उनसे दो आग्रह किए थे कि वे हमारी संस्था 'रचना' में नई कविता पर एक व्याख्यान दें और वे 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' शीर्षक से लिखकर आए थे। व्याख्यान के अगले दिन उन्होंने अपनी लम्बी कविता का हम कुछ मित्रों के सामने, जिसमें रमेशदत्त दुबे, आग्नेय, जितेन्द्र कुमार और प्रबोध कुमार शामिल थे, पढ़ा।

आगे श्री वाजपेयी कहते हैं – लगभग एक घंटे कविता पढ़ने के बाद उन्होंने कहा कि 'पार्टनर बोर हो रहे हों तो बंद करते हैं, चलिए चाय पी ली जाए'। दूसरी तरफ, हम सभी हतप्रभ थे- हमने ऐसी विचलित करनेवाली लम्बी कविता इससे पहले न तो सुनी थी, न ही पढ़ी। मुक्तिबोध इस कविता पर उसके बाद बरसों काम करते रहे और मार्च 1964 में, उनके पक्षाघात होने के बाद पोलिश विदुषी अग्नेश्का राजनांदगांव से लौटते हुए अपने साथ 'आशंका के द्वीप : अंधेरे में' शीर्षक से इस कविता को अपने साथ लाईं। उन दिनों भारतीय ज्ञानपीठ के दरियागंज दिल्ली स्थित कार्यालय में हम कुछ लेखक मिलकर एक गोष्ठी चलाते थे। तब 1 मार्च को यह कविता उसमें पढ़ी गई। कविता 'कल्पना' में छपी, पर तब जब

मुक्तिबोध उसे देखने के लिए अपने भौतिक शरीर में जीवित नहीं थे। इस वर्ष जैसे मुक्तिबोध के दुखद निधन के वैसे ही 'अंधेरे में' कविता के प्रकाशन के पचास वर्ष हो रहे हैं।

वाजपेयी जी के अनुसार अंधेरे में' कविता की लम्बी यात्रा अपने आप में 'वेदना-भास्कर' रही है। उसके कालजयी होने का इससे अधिक और प्रमाण क्या चाहिए। हमारा वर्तमान समय जिस तरह की सकर्मकता की मांग करता है उसका एक प्रारूप इस कविता में है और अर्धशती के बाद भी धुंधला या अप्रासंगिक नहीं हुआ है।

इसी तरह जाने-माने व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने अपने संस्मरण में लिखा है – राजनांदगांव में तालाब (रानी सागर) के किनारे पुराने महल का दरवाजा है – नीचे बड़े फाटक के आसपास कमरे हैं,दूसरी मंजिल पर एक बड़ा हाल और कमरे,तीसरी मंजिल पर कमरे और खुली छत। तीन तरफ से तालाब घेरता है। पुराने दरवाजे और खिड़कियां,टूटे हुए झरोखे,कहीं खिसकती हुई ईंटें, उखड़े हुए पलस्तर दीवारें। तालाब और आगे विशाल मैदान। शाम को जब ज्ञानरंजन और मैं तालाब की तरफ गए और वहां से धुंधलके में उस महल को देखा,तो एक भयावह रहस्य में लिपटा वह नजर आया।

दूसरी मंजिल के हाल के एक कोने में विकलांग मुक्तिबोध खाट पर लेटे थे। लगा,जैसे इस आदमी का व्यक्तित्व किसी मजबूत किले सा है। कई लड़ाइयों के निशान उस पर हैं। गोलों के निशान हैं,पलस्तर उखड़ गया है,रंग समय ने धो दिया है- मगर जिसकी मजबूत दीवारें नींव में जमी हैं और वह सिर ताने गरिमा के साथ खड़ा है। मैंने मजाक की, "इसमें तो ब्रह्मराक्षस ही रह सकता है।"

मुक्तिबोध की एक कविता है 'ब्रह्मराक्षस'। एक कहानी भी है जिसमें शापग्रस्त राक्षस महल के खण्डहर में रहता है। मुक्तिबोध हंसे। बोले, "कुछ भी कहो पार्टनर अपने को यह जगह पसंद है।"

तो राजनांदगाँव में यही वह जगह है जहां मुक्तिबोध ने अपने रचनात्मक जीवन के सर्वाधिक उर्वर वर्ष बिताए। वरिष्ठ पत्रकार शरद कोठारी के सार्थक प्रयास से मुक्तिबोध दिग्विजय कालेज में पदस्थ हो सके थे। यहां आने से पहले तब जबकि स्व. कोठारी जी 1952-54 की अवधि में नागपुर मॉरिस कालेज के विद्यार्थी थे, वहां जाने से पहले मुक्तिबोध के सम्बन्ध में उनकी जानकारी नहीं के बराबर थी, परन्तु वह नागपुर में वह बहुत चर्चित थे। मोतीराम वर्मा के 'लक्षित मुक्तिबोध' में निवेदित साक्षात्कार में इसका जिक्र करते हुए कोठारी जी में कहा है – मुक्तिबोध आदमी को पहचानने में माहिर थे। कोई चमक-दमक दिखाकर या अतिरिक्त आत्मप्रदर्शन से उन्हें प्रभावित नहीं कर सकता था। आडम्बरी प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियों का उन पर कोई असर नहीं था, न दिल से न ही दिखावे के लिए वह उन्हें आदर दे सकते थे। इसी तरह वह प्रायः अपने स्तर से बातें करते थे, जिससे नीचे उतारकर मिलना उनके लिए संभव नहीं था।

मुक्तिबोध के राजनांदगांव आने की कहानी का सार, नागपुर में पढ़ाई पूरी कर लौटने के बाद कोठारी जी के इन शब्दों में मिल जाता है – "नागपुर से यहाँ आ कर मुक्तिबोध के सम्बन्ध में विविध सूत्रों से जानकारी मिलती रही। मैंने तब लॉ कर लिया था और सन 1957 में अनेक महानुभावों सहयोग से राजनांदगांव में दिग्विजय कालेज की स्थापना करने में हमें सफलता मिल गई थी। प्रमोद वर्मा और किशोरीलाल जी शुक्ल (महाविद्यालय के संस्थापक प्राचार्य) के भतीजे, वह मेरे नागपुर के दोस्त थे, के

परामर्श से हमने मुक्तिबोध को यहाँ अपने कालेज में लाने की योजना बनायी। उनसे प्रार्थना-पत्र लिखने को कहा गया। कालेज की मैनेजिंग कमेटी ने अपने हेल्दी एटीटचूड का परिचय दिया और मुक्तिबोध लेक्चरर नियुक्त कर लिए गए।"

स्मरणीय है कि मुक्तिबोध के जीवन का अंतिम अध्याय, राजनांदगांव के साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण में बीता। उनके सृजन की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है। यहाँ आकर उन्होंने सुरक्षा की सांस ली और उन्हें यायावरी जीवनवृत्ति से छुटकारा मिला। उनके भीतर स्थायित्व की भावना का उदय हुआ। यहाँ उनका ज्यादातर समय लेखन कर्म में बीता। वह स्वयं कहा करते थे : राजनांदगांव को छोड़कर अब मैं कहीं नहीं जाऊंगा।

मुक्तिबोध जिस प्राकृतिक वातावरण से घिरे थे, उसे प्रतीकों के माध्यम से शब्द देकर जीती-जागती रचना में ढाल देते थे। वह सिर से पाँव तक कवि थे। उनका व्यक्तित्व ही काव्यमय था। रानीसागर में पाल पर ढलती सांध्य बेला में जो बत्तियां जलतीं उनकी परछाइयों को मुक्तिबोध ज्योतिस्तंभ कहते थे। उस पूरे परिवेश को वह इडलिक यानी काव्यमय कहा करते थे। भाऊ समर्थ लिखा है – राजनांदगांव गया। उनसे (मुक्तिबोध से) मुलाकात हुई। रात भर घूमते रहे, नागपुर की तरह। बातें और चर्चाएं। घुमावदार सीढ़ियां चढ़कर हम उनकी गुफानुमा हवेली (किराए की) के कमरों में बैठे। स्याह दीवारें। मुझे लगा एक पुरानी भयानक ईमारत। वहां से दिख रहा था बाहर का विशाल दृश्य। बहती हवा ! वह पुरानी इमारत ऐसी लग रही थी, जैसे उनके सृजनशील मन रूप।

याद रहे कि मुक्तिबोध ने लिखा है –

उन्नति के चक्करदार /लोहे के घनघोर
ज़ीने में अन्धकार !!/गुम कई सीढ़ियाँ हैं
भीड़ लेकिन खूब है /बड़ी ठेलमठेल है
ऊपर मंज़िल तक /पहुँचने में बीच-बीच
टूटी हुई सीढ़ियों में /कुछ फंस गए, कुछ
धड़ाम-से नीचे गिर /मर गए सचमुच
प्रगति के चक्करदार /लोहे के घनघोर
ज़ीने में सांस रुक /जीने से स्वर्गधाम
कई पहुँच गए प्राण !!
(1958, राजनांदगांव, मुक्तिबोध रचनावली)

वास्तव में मुक्तिबोध सफलता के दोयम दर्ज़े के तौर तरीकों से पूरी तरह दूर रहे। कभी कोई कपटजाल नहीं रचा। चालाकी और छल-छद्म से जिंदगी की ऊंची मंज़िलों तक पहुँचने का कोई ख़्वाब तक भी नहीं देखा। तभी तो वह दो टूक लहज़े में कह गए –

असफलता का धूल कचरा ओढ़े हूँ
इसलिए कि सफलता
छल-छद्म के चक्करदार जीनों पर मिलती है

किन्तु मैं जीवन की –
सीधी-सादी पटरी-पटरी दौड़ा हूँ / जीवन की
(1960-61,राजनांदगांव, पूर्ववत)

और यह भी कि सही की तलाश उनकी कभी ख़त्म नहीं हुई। तलाश के यह बेकली दिन-रात उनकी आँखों में वह तैरती रही –

सुबह से शाम तक
मन में ही /आड़ी-टेढ़ी लकीरों से करता हुआ
अपनी ही काट-पीट
गलत के ख़िलाफ़ नित सही की / तलाश में कि
इतना उलझ जाता हूँ कि / जहर नहीं
लिखने की सियाही मैं पीता हूँ कि
नीला मुँह —
दायित्व भावों की तुलना में
स्वयं का निजत्व / जब देखता तो पाता है कि
स्याही सोख लाल जीर्ण कागज़ पर उभरे हुए
कटे-पिटे वाक्यों के / कटे-पिटे गणित के
उलटे उछ्रे अक्षरों-अंकों-सा
घड़ी-घड़ी सुधार कि कटा-पिटा
फैला है व्यक्तित्व / सही की तलाश में।
(1956 -1959, नागपुर-राजनांदगांव,पूर्ववत)

रचनात्मक दबाव को झेलने की अदम्य क्षमता के चलते मुक्तिबोध के कवि को विषयों की कमी कभी नहीं रही। जैसे सारी दिशाओं से पूरी कायनात उन्हें सदैव पुकारती रही कि बहुत कुछ कह देने के बाद भी अभी कुछ तो ऐसा है जो अनकहा रह गया है। भूलना मत कि उस अनकहे को वाणी देना अभी बाक़ी है।

घर पर भी, पग-पग चौराहे मिलते हैं,
बाहें फैलाये रोज़ मिलती हैं सौ राहें,
शाखा-प्रशाखाएं निकलती रहती हैं,
नव-नवीन रूप दृश्य वाले सौ-सौ विषय
रोज़-रोज मिलते हैं –
और, मैं सोच रहा कि
जीवन में आज के
लेखक की कठिनाई यह नहीं है कि / कमी है विषयों की
वरन आधिक्य उनका ही
उसको सताता है

और, वह ठीक चुनाव नहीं कर पाता है।
(1959-60, राजनांदगांव,पूर्ववत)

…लेकिन, मुक्तिबोध का यह अडिग विश्वास मृत्यु पर्यन्त कायम रहा –

नहीं होती, कहीं भी ख़तम कविता नहीं होती
कि वह आवेग-त्वरित काल यात्री है।
व मैं उसका नहीं कर्ता,
पिता-धाता / कि वह कभी दुहिता नहीं होती,
परम-स्वाधीन है, वह विश्व-शास्त्री है।
(1957-1961, राजनांदगांव,पूर्ववत)

सच ही है कि मुक्तिबोध के अचल सृजनात्मक विश्वास की मानिंद उनकी कविता भी अनंत काल तक आबाद रहेगी।

==========

लेखक शासकीय दिग्विजय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
राजनांदगांव, छत्तीसगढ़ में प्राध्यापक (हिन्दी विभाग) हैं
मो.09301054300